कवि प्रकाशन, बीकानेर

हवा और हवा
के
बीच

अज़ीज़ आज़ाद



प्रकाशक
कवि प्रकाशन
[illegible]
[illegible] 334003

ISBN 81-86436-25-1

प्रथम संस्करण 1999

मूल्य नब्बे रुपया

मुद्रक : सांखला प्रिण्टर्स, सुगन निवास
चन्दनसागर, बीकानेर 334001

Hava Aur Hava Ke Beech
by AJIJ AJAD

Rs 90/-

रेत पे नक़्क़ाशी

मेरी बात अपनी कविता की इन पंक्तियों से आरम्भ करता हूँ—'तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं है/हवा के सिवाए/हवा और हवा के बीच/केवल हवा है/कहाँ हो तुम/कहाँ हूँ मैं।' फिर भी सच तो यह है कि हम हैं और इसी होने का अहसास कराती है कविता, जो होने को स्वीकार भी करती हैं और अस्वीकार भी। कविता ही मानवीय अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप है। रूस के कवि जोसेफ ब्रॉडस्की ने सत्य ही कहा है कि 'कविता न केवल सारतत्व मे अपनी बात कहती है बल्कि यह किसी मानवीय अनुभव को सम्प्रेषित करने का सबसे घनीभूत रूप है।'

मैं सोचता हूँ इस ससार की विराट्ता के बीच रहकर एक सवेदनशील व्यक्ति के लिए बहुत कुछ लिखा जाने के बावजूद और भी बहुत कुछ लिखने को है। मैं जिस तरह मरुअंचल मे रहता हूँ वहाँ फैला हुआ सन्नाटा और समुद्र से गहरी प्यास है जिस में मन छलागे मारता हिरन बन जाता है। यहाँ रहने वाले लोग अभावों से त्रस्त होने के बजाय चुनौतियो का स्वागत करते हैं। अभावों में सवेदना और अधिक जागृत हो जाती है। यहाँ अतीत और वर्तमान का सत्रास भी जीवन में रस का सचार करता है। यही मेरी रचनाओं का सार है।

मैं अपनी इन रचनाओं के बारे में इतना ही कह सकता हूँ कि लोग पत्थर पर तो नक्काशी करते ही हैं, मगर मैंने रेत पर नक्काशी करने की कोशिश की है। तेज हवाओ के बीच रेत पर नक्काशी करना बेमानी लग सकता है मगर सृजन की परम्परा और रचने का सुख तो जीवित रहता ही है।

गजलें लिखते-लिखते मन भी गजल हो गया था। इन गजलों के बीच मैं ये कविताएँ भी लिखता रहा जो भाषा और शिल्प के लिहाज से गजलों से भिन्न हैं। कुछ साहित्यिक संस्थाओं द्वारा मेरे एकल काव्यपाठ के अलावा कवि सम्मेलनों और गोष्ठियों में भी मैं इन रचनाओं को सुनाता रहा हूँ। साहित्य प्रेमियों और मित्रों ने उत्साह बढ़ाया तो आज पुस्तक के रूप में आपके सामने है। इसके तीन खण्डों में अलग-अलग सोच की कविताएँ हैं। उत्साह वर्द्धन के लिये मैं आभारी हूँ डॉ. नन्दकिशोर आचार्य, श्री मालचन्द तिवाड़ी, जनाब मो. इब्राहिम गाजी, बुलाकी शर्मा, श्रीलाल मोहता, डॉ. मोहम्मद हुसैन, अनिरुद्ध उमट आदि अन्य कई मित्रों और श्रोताओं का। इनके साथ ही मैं आभार प्रकट करता हूँ कवि प्रकाशन की संचालिका शशिकला बिस्सा और सांखला प्रिंटर्स के श्री दीपचन्द सांखला का जिनके सहयोग से यह किताब आप तक पहुँची।

—अज़ीज़ आज़ाद

❖ मिज़राब खो गई है

बिलख रही है
प्यास

प्यास-1

मैंने नहीं देखा
किसी तूफानी नदी का वेग
उछलता, शोर मचाता जल
होगा—शायद होता होगा
अथाह उमड़ता गहरा सागर
लेकिन मेरी प्यास!
इस से गहरा क्या होगा आकाश?
मीलो फैले इस मरु की
लहर-लहर मे
पसर गई है प्यास
चिलक रही है
सोनामाटी के कण-कण से
खनक रही है सूखी-सूखी घास।
कैसी होती है उफनती नदी
उछलता जल?

प्यास-2

भीगी पलकों से झरता है
झर-झर
तपती रेत का
शीतल सपना
बालू मिट्टी की लहरों पर
　　तैर रही है प्यास
प्यासी हिरनी की आँखों में
ठहर गई है।

झरना—केवल तपती रेत का झरना
उमड़-घुमड़ कर चले गये फिर बादल
जैसे कोई इक प्यासे से
छीन ले गया छागल।

यहाँ वहाँ पर छुपा हुआ है
इनका अपना जल
झरने, निकल पड़े
इन धोरों में आकर।

पोर-पोर से लिपट

तू बादल और मैं मरु की माटी
छलकाए तू प्रेम और मै प्यासी
ओ परदेसी!
कभी बरसता, उमड-घुमड़ता आ
प्रेम का रस बरसा
आ—कभी मेरी ही खातिर आ
पोर-पोर मे लिपट-लिपट कर बरस
तर हो जाए तन-मन मेरा
हरियल हो कर महक उठे
यह मेरी काया

बार-बार मुझको तरसा कर
सरक गया तू मुझ को छू कर
कभी दे गया तपन
बरस कर क्षण भर मुझ पे
छूआ पांख भर
गया आँख भर

अबकी बार लबालब आना
फकत चूम कर लौट न जाना

बांझ नहीं हूँ

ओ निष्ठुर
ओ दगाबाज ऋतुराज
तूने फेरी नजरे अपनी
कोख मेरी बदनाम हो गई
मुझपे है आरोप
कि मैंने फोग खेजडे ही जन्मे है।

जब भी बोये
तूने मेरी छाती मे सन्नाटे बोये
दुनिया भर की आग झौंक कर
मेरे तन में
डींग हाकता रहा है तू
अपने पौरुष की,
रांध तू जितनी रांध सके
यह मेरी छाती
पर इसकी गहराई
तू न नाप सकेगा
मैं भी सागर की जाई हूँ
माना आशा भरी नहीं
पर बांझ नहीं हूँ।

नपुंसक बादल

बारिश की पुकार करते
ठोर-ठोर पर खड़े हैं
सिणियों के झुण्ड
आँखों के खाली कटोरे
आसमान की ओर फैलाए
धरती का अन्नदाता
अपने सूखते खेत को देख
छोडता है दर्द भरी सासें
लज्जित है सूरज
ये गरजते बादल भी
बिना एक बूंद बरसाए
कितने नपुंसक लगते हैं
ये भगोडे बादल
दुम दबा कर भागते हुए?
आखिर आते ही क्यों हैं
दिल जलाने के लिए?

सहम जाता है सूरज

बादल का हर टुकड़ा
मुझे ईश्वर जैसा लगता है
मुर्झाए खेत-सी मेरी मा
अपने झुर्रियों भरे चेहरे पे
सिणियो जैसे बाल फैलाए
तरसती नजरों से
बार-बार निहारती है उसे
मागती है दया की भीख
मगर वह निकल जाता है ऊपर से
खुद को बचा कर हर बार।
सूरज रोज जागीरदार की तरह
मेरे बापू की नगी पीठ पर
मारता है लूओ के कोड़े
सोखता रहता है रक्त
मगर वह दम तोडने के बजाए
रोज निकल पडता है हल लेकर
अपने पसीने से करता रहता है
माटी को लथपथ
उसके बदन से निकलती है लपटे
सुलगने लगती है सासें
सहम जाता है सूरज।

बरसे तो कहीं जल

अब के तो आई है परवा
धूम मचाती
यह तो निश्चित बरसेगी घनघोर
आज तो पूरी हो जायेगी आस
मन का निखरेगा आकाश
धोरों से फूटेगी फिर से
बासुरी की तान
लौट आयेंगे बरसों मे
प्यासी धरती मे प्राण
मस्त करेगी इस माटी की
सौंधी-सौंधी गंध
ठूंठ, खेजड़ों पर भी
अब तो लौट आएंगी चिड़िया
हरियल होंगी सम्बन्धों की शाखे
खुल जाएंगी हर पंछी की पांखे
गर्द दुखों की धो डालेगे
पोखर में मल-मल
बरसे तो कहीं जल!

रेत का हेत

चिकनी मिट्टी के गारे से
लीप-पोत कर आंगन-द्वारे
इसे सवारा मैंने
मन मे कई मांडणें मांड
रचाए यादों के नितराम
महलाई है घर की हर दीवार
घर है सुख-दुख का संसार
ताजी हवा, नीम का साया
निथरी है कंचन-सी काया
पक कर मीठी हुई निबोली
झरने लगे बेरी के बेर
डबाडब है गांव की तलाई
मुडकने लगा है मौसम
ओ परदेसी!
इस मौसम का तुझे निमंत्रण-आ!
घर का रूप निहार
भर सांसों में एक बार
सौंधी मिट्टी की गंध
देख रेत का हेत।

जो पसरा है मुझमें

मुझी में पसरा है
वह मरुस्थल
जिसे मैं उकेरता हूँ कागज पर
मैं ही होता हूँ
इसमे भटकता हुआ
वो प्यासा हरिण भी
जो अपनी अजली भर प्यास के लिए
दर्शाता है—
पूरी झील पी जाने की तड़प,
तपती रेत की हूक
मुझी में जागती है मत्र [illegible]
मैं ही झांकता हूँ
प्यासे हरिण की [illegible]
मेरे शब्दों मे [illegible]
वह मेरी [illegible]
उस [illegible]
जो [illegible]

उफन पड़ता था हरा

मकई के दाने-सा
दमकता था तुम्हारा रूप
तुम्हारे लहगे की लहरों पे
नाचते थे मोर
तुम्हें देखते ही मेरे रक्त में
उठने लगती थीं तरंगें
दिल टनटनाने लगता बैल की घंटी-सा
मन के बजर खेत में
फूट पड़ता था हरा।
पर कुछ ही दिनों में तुम्हारा रंग
होने लगा है बाजरी-सा
तुम्हारी आँखों के इर्द-गिर्द
यह अकाल की-सी छाया
चेहरे पे खिची लकीरें
सुखाती रहती है मुझे,
मैं जानता हूँ मेरी मूमल
मुझ जैसे बिराने खेत पर टिकी है
तुम्हारी हर आशा।
पिछली फसल पर जब्त हो गये थे तुम्हारे झुमके
महाजन की तिजोरी में
लछिया के लौग धरती के पेट में
और इस बार फिर सूखा है।

हो जैसे अभिशाप

कैसे बुझ पायेगी आखिर
तेरी अनबुझ प्यास!
कहाँ से लाऊँ वो सुरसती वापस?
तुझ को फिर से कैसे कर दूं-जल?
बरस-बरस भी कब तक बरसे बादल?
पी जाती है तू सागर के सागर
फिर हो जाती खाली और उदास
युगों-युगो से
चलता यही अबाध
प्यास!...यह भी कैसी प्यास!
किसी ऋषि का हो जैसे अभिशाप
तुमसे निश्चित हुआ है कोई पाप।

मैं रोहिड़ा

मै रोहिडा
जूझ रहा हूँ हर विपदा से
हरा रहूँ या सूखा
कोई फिक्र नहीं है।

धीरे-धीरे मेरे सम्मुख
कितने ही कचनार, गुलमोहर
झुलस गये है
मै लूओं में हरा रहा हूँ,
मेरी ऊडी जडे नहीं है बरगद जैसी
कोई बुद्ध नहीं बैठा है मेरे साये
मैं तो स्वय अटल तपस्वी
योगी जैसा
लीन समाधि में बैठा हूँ
युगो-युगो से
झेल गया अंधड, लूएं सब
मरा नहीं पर
मैंने नहीं दिया किसी को
कभी कोई भी फल
मुझ पे कौन चढ़ाए जल ?

फोग

न जाने कहाँ गई
वो ऋतुएँ
वो हरियाली
वो महकते
रंग-बिरंगे फूल ?
सभी खो गये कहीं
इस रेत में
अपने-अपने रंगो के साथ
मगर खडे हैं अब भी फोग
दूर तक पसरी
तपती रेत पर—हरियल
डायन लूओ की
हंसी उड़ाते

मैं सिणियां हूँ

मरु है मेरी
और मरु की मै पहचान
रचापचा हूँ इसी रेत मे
मैं पौरुष हूँ
मैं गौरव हूँ
मैं यौवन हूँ इस माटी का
मै लूओ मे हरा रहा हूँ
मैं आंधी मे खडा रहा हूँ
नहीं उखडता किसी वेग से
लगा समाधि मरुआसन पर
जमा रहा हूँ
बिना जड़ो के।
अटल मेरा विश्वास
नहीं है मुझे कोई सन्ताप
मैं सिणिया हूँ
सदाबहार
मैं जीवट हूँ मरुधरा का

नदी हूँ मैं भी

नदी हूँ मैं भी
कल-कल बहती
मचलती, उफनती
सब को अपने में लपेटती हुई
सब कुछ वही तो है मुझमें
जल के सिवाए,
जो मुझमें रहा है कभी
हिलोरें मारता हुआ
अब रेत है केवल
हवा की फटकार से
फुंफ्कारती हुई।
केवल जल ही तो
नहीं होता है नदी
नदी हूँ मैं भी
बहती रेत की नदी।

निथर गया मन

सूरज पिघल-पिघल कर फैला
कण-कण मे रम गई
सुनहरी किरणे
रात चाँद ने नहलाया है
निथर गई कचन-सी काया
दूर क्षितिज के पार तलक भी
पहुँच गई लहराती रेत
कोमल-कोमल, भरी-भरी,
ओढ़ लहरिया
मौन-मौन-सी
शरमाई, सकुचाई रेत।
पसर गया मन
निथर गया मन।

सुनहरा समुद्र

एक सुनहरा समुद्र
जिसपे तैरता है लहरों का लश्कर
कुदरत की बेमिसाल कला
यह मिट्टी का रंग
यह चमक
यह कसक
यह कोमलता
यह पावनता
पानी भी चिपकता है बदन पर
भिगो देता है अंग-अंग
मगर यह मरु की माटी
मां की गोद जैसी
मृदुल, ममतामयी
गुलाब के स्पर्श-सी
छूकर निर्मल हो जाता है तन भी
और मन भी।

करती है मुझे हरा

बस तू ही तो है मेरा प्राण
मेरी पहचान—मेरा ईमान
मै तेरे ही अन्न-जल से
पला-बढ़ा हूँ-मा
तुझे ही समर्पित है मेरी देह
मैंने पिया है तेरे प्रेम का ऊडा जल
मैं जब भी प्यार से तड़पा हूँ
फूट पड़ी है तेरी ममता
आबे-जम-जम बन कर—
तेरा जल आवे-जम-जम ही तो है
मेरे लिए।
तू ही तो मुझ में रच-पच के
करती है मुझे हरा
और एक दिन मैं
तुझी मे समा कर हो जाऊगा तेरी ही तरह।

रेत की रचना

वो तेरा ही तो दर्द है
जो मुझमें रचपच कर
मुझे करता है हरा,
जो भी आकर्षण है मुझ मे
वह मेरे रूप का नहीं
उस राग का है
जो तेरे भीतर से फूटती है,
तू ही तो बहती है मेरे रक्त में
मेरी सांसों में तेरा संगीत
मेरे होठों पे तेरा गीत है
मैं तेरा करिश्मा हूँ,
तेरी तपिश ने मुझे निखारा
तेरे होठों की छूअन से बन जाता हूँ बांसुरी
जब मैं टूट के बिखरूंगा
तू ही तो मुझे अपने में समाएगी
मैं तेरा अपना हूँ,
तेरी रेत की रचना हूँ।

समुद्र है यह भी

समुद्र है यह भी
लहराता
उफनता
हथौड़े मारता हुआ
अथाह रेत का समुद्र,
उठता रहता है
इसमें भी तो
सांय-सांय करता
शोर मचाता
सब कुछ अपने में
समेटता हुआ ज्वार
बिखरती है रेत
टकराती है वेग से
लहरों की तरह
सब को अपने में भरती हुई
समुद्र है यह भी
प्यास से लबालब।

माटी की ममता

ममता का सागर है
मेरी धरती मा
मैं सराबोर हूँ उसके प्यार मे
बार-बार स्नेह से
सहलाती है मेरा बदन
चूमती है, दुलारती है मुझे
मै उसकी गोद मे लेट कर
अनुभव करता हूँ उसका आशीर्वाद।
जब भी वह ममता से
दुलारती है मुझे
मैं होने लगता हूँ हरा
निखरने लगती है मेरी देह
मर्तारे की तरह।

अग्नि परीक्षा

मीलों पसरे सन्नाटे मे
मैं धूप की चादर ओढ़े
मौन समाधि में बैठी हूं युगों-युगों से
अभिशापित हूं बिना पाप के
मैं पावन—पावन ही हूं गंगा जल-सी
वीर, यशस्वी पूतों वाली माता हूं मैं
जो सूरज से आंख लड़ाते
दुख सहते हैं पर्वत जैसे
कट जाते हैं पुर्जा-पुर्जा मेरी खातिर।
दोष यही है मेरा
मुझ को दुर्भिक्षों ने हरण किया है
इसीलिए मुझ को
अपनों ने त्याग दिया है
सारी व्यथा जान कर मेरी
जानबूझ अनजान है सारे
राजघाट के धोबी
केवल आपस मे चर्चा करते हैं
आखिर कितनी बार मुझे यूं
अग्नि परीक्षा देनी होगी?
दुर्भिक्षों की पीड़ा
कब तक सहनी होगी?

धोरों का धर्म

यह उम्रो की थकन
यह सदियो की प्यास
हमारे गौरव का इतिहास
पीढ़ी दर पीढ़ी पाया है
इसी थार का प्यार
कहाँ छोड़ कर जाएं
अपना सुख-दुख का संसार ?

आज नहीं तो
कल बरसेगा सावन
पड़ेगी चहुं ओर बौछार
रमे हैं इस माटी मे हम
मिलेंगे इस माटी में प्राण।

मिज़राब खो गई है

तुम्हारे और मेरे बीच

तुम्हारे और मेरे बीच
कुछ भी नहीं है
हवा के सिवाए
भीतर और बाहर
हवा ही हवा है
हम कागज की चिन्दियो की तरह
उड़ रहे हैं आस-पास
रुकना और चलना
मिलना और बिछुडना
सब कुछ उसी पर तो है
हमने क्यो बना लिए
सपनों के पुल
कल्पनाओं के महल
रिश्तों के किले ?
हवा और हवा के बीच
केवल हवा है
कहाँ हो तुम ?
कहाँ हूँ मैं ?

ढलते सूरज का आकर्षण

कितना अच्छा लगता है
ढलते सूरज को निहारना।
चमक की चुभन से बंद नहीं होती आँखें
न ही झुलसने का डर भी
लालिमा और भी बढ़ जाती है
सुहाती है
—जैसे ढलती उम्र में
गदराए बदन के उभारों के साथ
और भी बढ़ जाता है चेहरे का सौम्य आकर्षण
बरबस खींच लेता है अपनी ओर
कितना निकट लगता है ढलता सूरज।
कितना सहज।
कितना मोहक—आखिरी कोर तक।
सभी रहते हैं उगते सूरज की चाह में
बंद हो जाती हैं आँखें पूजते हुए भी जिसे
कितना करीब लगता है ढलता सूरज।
अपनी बाहों में भरता हुआ-सा
जीना सिखाता है विशालता के साथ
अपनी छटा बिखेरता हुआ अन्त तक
कितना अपना लगता है ढलता सूरज?

तुम गज़ल हो गई

वो तुम्हीं तो हो
जो बहती रही हो मेरे रक्त में
साज की तरह।
अपनी एक उम्र देकर
तुम्हें पाया है मैंने
हा, मैंने ही गढ़ा है तुम्हें
अपने दिल के चाक पर
जिन्दगी के सारे पृष्ठ नष्ट कर
हाशियों पर तुझे सजाया
मैंने शे'रों की जगह तेरे लब लिखे
मिसरो में तेरा दर्द कहा
कलम की नोक से चूमा
तेरे नशे मे झूमा
और तुम गजल हो गई सबके लिए
मैं कुछ भी नही रहा—
किसी के लिए।

प्यास हो गई हो केवल

तुम्हीं नहीं बहती थी केवल
लहराती, मदमाती, छलकती हुई
बहा हूँ मैं भी साथ-साथ
अब कौन किस में वह रहा था
याद नहीं
न तुम, तुम रही थीं
न मैं ही अपने में
होना तो था ही स्वयं के होने का आभास
और बहुत दूर हो गई तुम
तुम समा गई एक परिधि में
और एक समुद्र सूख रहा था मुझमें
प्रतीक्षा भी कैसे करता तुम्हारी
क्योंकि तुम नदी नहीं रही
प्यास हो गयी हो केवल
किसी और के हिस्से की
और मैं मरुस्थल हो गया
तुम्हारे बगैर।

तुम ग़ज़ल हो गई

वो तुम्हीं तो हो
जो बहती रही हो मेरे रक्त मे
साज की तरह।
अपनी एक उम्र देकर
तुम्हें पाया है मैंने
हा, मैंने ही गढ़ा है तुम्हें
अपने दिल के चाक पर
जिन्दगी के सारे पृष्ठ नष्ट कर
हाशियो पर तुझे सजाया
मैंने शे'रो की जगह तेरे लब लिखे
मिसरो मे तेरा दर्द कहा
कलम की नोक से चूमा
तेरे नशे में झूमा
और तुम ग़जल हो गई सबके लिए
मैं कुछ भी नहीं रहा—
किसी के लिए।

प्यास हो गई हो केवल

तुम्हीं नदी बहती थीं केवल
लहराती, मदमाती, छलकती हुई
बहा हूँ मैं भी साथ-साथ
अब कौन किस में बह रहा था
याद नहीं
न तुम, तुम रही थीं
न मैं ही अपने में
होना तो था ही स्वयं के होने का आभास
और बहुत दूर हो गई तुम
तुम समा गई एक परिधि में
और एक समुद्र सूख रहा था मुझमें
प्रतीक्षा भी कैसे करता तुम्हारी
क्योंकि तुम नदी नहीं रही
प्यास हो गयी हो केवल
किसी और के हिस्से की
और मैं मरुस्थल हो गया
तुम्हारे बगैर।

मोनालीसा की मुस्कान

सचमुच मुस्काती है मोनालीसा
दिल की आँखो से दिखती है
उसकी मुस्कान
वैसे ही जैसे मुस्काता है चाँद
मुस्कराता है गुलाब
जैसे चाँद की हल्की बारीक-सी किरन
उभरती है घुप्प अंधेरे मे
जिसे देख कर चमक उठती है आँखें
खिल उठते हैं होठ
टूटती है उदासी की परत
खोल देती है मन
कौन मुस्कराता है
उसके होठो मे ?

योगी है मोर

नाचता है मोर
अपनी देह और प्राण से
यदि नृत्य है कला
और कला योग
तो यह पराकाष्ठा है उसकी

जब पंख फैला कर
थिरकता है मोर
झूमता है जंगल भी
मोरनी के साथ-साथ
नाचते-नाचते टपकने लगते हैं
जब उसकी आँखों से आँसू
रीझती है मोरनी
उन्हें चुग लेती है मोतियों की तरह
और हो जाती है तृप्त

बस यही है उनका प्रणय
सहवास का सुख
योगी ही रहता है मोर
तभी तो सजती है उसकी पाख
योगेश्वर के मुकुट पर।

इसी का नाम है प्यार

मुझमे पसरती जा रही है
भीतर ही भीतर
तुम्हारी जडे
उन्हीं को सींचने मे लगा है
मेरा रोम-रोम
केवल एक बीज का विस्तार
भीतर-बाहर
अपरम्पार!
शायद
इसी का नाम है प्यार।

वो तो आवारा नदी थी

मुझे वह मिल गई थी
राह चलते इक सफ़र में
थकी-थकी, भटकी हुई-सी
चल के आ रही हो जैसे इक लम्बे सफ़र से
कुछ पल साथ मेरे बैठ सुस्ताने को आतुर।
अचानक हो गई चंचल
उठा हो ज्वार जैसे!
तटों को तोड़ कर जैसे पसर जाने को व्याकुल!
मुझे छूने, समा लेने की चाहत में
समर्पित करने को अपना सभी कुछ
मैंने चाहा भी—तन से लगा लू, शान्त कर दू
भींच लू अपनी भुजाओं में
मगर ऐसा मैं कुछ भी कर न पाया
अब और उसके साथ आगे चल न पाया
मैं उसके वेग को कैसे समाता, शान्त करता?
वो तो आवारा नदी थी।

सारे मौसम छुपे हैं मुझ में

सारे मौसम
छुपे हैं मुझ मे ही
सावन मेरी आंखों में
वसंत मेरी चाहों मे
सर्दी मेरी आहों में
गरमी मेरी बाहों में
किसी मौसम का अर्थ
मुझे मत समझाओ
बस एक बार
मेरे करीब आओ।

आंगन से आकाश तक

हंसती हैं औरते
अपनो पर, परायों पर
सास की खीज पर
पति के तमाशो पर
उन पर भी—
जो उन्हें पी जाना चाहते हैं आंखो से
पाना चाहते हैं छूने का सुख
घात मे रहते हैं बहेलियो की तरह,
जब भी मिल बैठती हैं औरतें
खोल देती हैं अपना मन
उड़ने लगती हैं हवा मे
पहुंच जाती है कहीं की कहीं
आंगन से आकाश तक
सारी हदों के पार तक
जब भी मिलती है औरते
खुल जाती है
खिल जाती हैं गुलाब की तरह
मगर घर जाते ही
टूट जाती हैं—बिखर जाती हैं औरते
कितने ही हिस्सो में।

खोना ही खोना है

सब रंगों से गहरा है
प्यार का रंग
इस का उजलापन
दिल का नूर है
आत्मा का उजाला
सत्य की शमा
कहते हैं फिर भी
प्यार अंधा है।

प्यार बहरा है
मगर इसका अहसास
बहुत ही गहरा है
यह तलवार की धार पर चलता है
कांटे की नोक पर
बूंद-सा ठहरा है
बस एक ही बात का रोना है
प्यार में केवल
खोना ही खोना है।

आग का दरिया

कैसे हो जाता है
एक ही नजर में प्यार ?
मिल जाता है दिल ?
दो ही दिनों में
सब कुछ सिमट जाता है
बाहों में ?
वो दर्द की तुर्शी
वो तड़प,
वो बेचैनी के क्षण,
आँखो से टपकता रक्त,
आग का दरिया
जिसे पार करने का जुनून,
कुछ भी तो नहीं है
इस कहानी मे
दो जिस्मों के सिवाए
जो भूल मिटने के बाद
शान्त हो कर सो जाते हैं
अपने-अपने सपनो मे
खो जाते हैं बस।

चुभन के बगैर

खिले-खिले
सुगंधित
फूलों के बीच रहने
उन्हें छूने का आनन्द
कितना अधूरा है
काटों की चुभन के बगैर।

अहसास

जब से तुम आए
मेरे निकट
मैं खुद कहीं
खो गया हूं
अपने ही वतन में
अजनबी हो गया हूं।

जो था कभी हमारे बीच

किसने गिराई वो दीवार ?
किसने मिटाई वो आँखों की शर्म ?
घर जो घर था
खिड़किया, पर्दे
आगन और द्वार
सब हो गये आर-पार
न तुम मेरे लिए हो
न मैं तुम्हारे लिए
कुछ नहीं बचा है
अपने लिए भी,
आगन में सजे हैं कैक्टस
कमरों में सन्नाटा
मनों में इच्छाओं का जंगल
जो पी गया चेहरों का पानी
आँखों की शर्म
अब बिहार जैसे दिन हैं
और आसाम जैसी रातें
शक और अविश्वास की भभक
सभी कुछ है अपनेपन के सिवाए
जो था कभी हमारे बीच।

कुछ जीवित है अब भी

मैं एक फुनगी

मैं एक फुनगी
हवा की मर्ज़ी पर
अनिश्चित भटकती हुई,
न जाने क्यों —
मार देते हो एक फूंक!
बार-बार फूंक!
क्या मैंने दबा लिया है
तुम्हारा आकाश?
रोक लिया है
तुम तक आता हुआ प्रकाश?
इसीलिए तो तुम
मार देते हो फूंक
कितने आतंकित हो तुम
मुझसे भी कहीं ज्यादा!
अनिश्चित हो तुम भी
किसी और की मर्ज़ी पर
मेरी ही तरह।

आत्मसमर्पण

तुम जब भी होते हो मेरे करीब
मेरा कद बहुत छोटा हो जाता है,
मैं अपने ही अस्थिपजर में दुबकने लगता हूँ
बारिश मे भीगे हुए परिन्दे की तरह।
ऐसा नहीं है कि मैं डरता हूँ तुमसे ?
या ऋणी हूँ तुम्हारा ?
नही मै याचक भी नहीं हूँ
कोई अपेक्षा भी नहीं रखता हूँ तुमसे
लेकिन चाहते हुए भी
बोल नहीं पाता हूँ तुम्हारे सम्मुख
केवल सुनने लगता हूँ तुम्हें,
कई बार न चाहते हुए भी।
कितना गर्व होता है तुम्हे
मेरे इस आत्मसमर्पण पर
कितने खुश होते हो तुम
सहज भाव से मेरा उपहास करते हुए!
और मैं आहत होकर भी
नाराज नहीं हो पाता हूँ तुमसे
बल्कि खुश ही होता हूँ तुम्हारे इस सुख से
जो मुझ से मिला है तुम्हे
मैं जानता हूँ
तुम्हारे साथ भी होता होगा ऐसा कहीं न कहीं।

कुछ जीवित हैं अब भी

दर्द से दरकी दीवारों मे
झरती आँखों की तरह
ये झरोखे
जिनसे झाकती होगी कभी रोशनी
इन पर पडी होगी कभी
किसी की ललचाई नजरें।
अब भीतर के सूने मकानों में
रह-रह कर फड़फड़ा रहा है सन्नाटा
कबूतरों की तरह
अलमारियों पर लगे दर्पणों पर
चिड़ियां मारती हैं चोंचें
अभी भी खण्डहर नहीं हुए हैं
ये घर
कुछ जीवित हैं इन में अभी भी
चाहे डर ही सही।

दीवारों से रिसता है राग

अभी भी सन्नाटा
बज उठता है सारंगी की तरह,
दीवारों से रिसता है राग
धूए से काली हुई छते
अपने भीतर छुपाए हैं
बहुत-से चितराम
सूने आगन का मौन तोड देते हैं
कभी-कभी अधखुले किवाड
हवा से बतियाते हुए,
गोखों से सुबह के सूर्य की किरणे
करती हैं अब भी आरती
खुले है आधे-अधूरे द्वार
साफ लगता है
यह घर छोडा गया है
कभी लौट कर न आने के लिए।

रचती भी है आग!

गुल हो जाता है सूरज भी
हर शाम
मगर नहीं मरती है आग
जलती रहती है निरन्तर
कई-कई रूपों में
चाहे मुझ में रहे या तुझ मे
जमीन मे रहे या आसमान मे
वह है कहीं न कहीं
जलती या सुलगती हुई
दिलों मे, दिमागों में,

नहीं होती यदि आग
कहाँ होती कविता भी ?
यह दुनिया भी

केवल जलाती ही नहीं है
रचती भी है आग!

मैं मुक्त होना चाहता हूँ

मेरा जीवन एक यातना शिविर है
मै अपने जिस्म की बैरक मे कैद
पैदा होने के जुर्म मे
जीने की सजा भोग रहा हूँ।
सब्र की सूखी रोटिया ठूसते-ठूंसते
छिल चुका है मेरा हलक
मै विश्वासो की ऐसी मरी हुई मछलिया निगल रहा हूँ
जिनके भीतर काटो का जाल बिछा है।
मैं जब भी तग आकर अपना मुह खोलता हूँ
मुझे कहा जाता है बागी
या फिर मसीहा
दोनो की ही सजा है मौत,
मुक्त होने के सारे रास्ते बद हैं
और मैं मुक्त होना चाहता हूँ
तोड़ना चाहता हूँ उन जंजीरों को
जिन्हे पहनाया गया था मालाओ की तरह,
जैसे पहनाई जाती हैं बलि चढ़ाने से पूर्व,
वो सब कुछ छीन लिया गया है मुझ से धीरे-धीरे
जो था कभी मेरा अपना—सब के लिए
अब मैं नहीं हूँ अपने लिए भी।

बदनाम है रात

जो सब को देती है पनाह
चूमती है, दुलारती है अपनी बाहों में भरकर
सहलाती है जख्म
बांटती है राहत
छुपाती है हमारा नंगापन
ढक लेती है सारे ऐब
फिर भी कोसते रहते हैं लोग
जागते है, तड़पते हैं
करवटें बदलते रहते हैं विरह मे
गिनते रहते हैं तारे सूरज की प्रतीक्षा मे।
सूरज-जो सब को कर देता है नग्न
भगाता है अपने साथ-साथ
जगाता है भूख
भुलवा देता है प्यार
फिर फेंक जाता है निढ़ाल करके,
थामती है रात
सहलाती है पोर-पोर
देती है थपकियां
दिखाती है सपने
जिन्हें रोज छीन लेता है सूरज।
फिर भी बदनाम है रात!

सोच की सलीब पर

बहुत कठिन है
किसी को भी साधारण या आम कहना
उससे भी कठिन है किसी को खास कहना भी
कई बार जो नहीं लगता कुछ खास
वही होता है अहम् और खास भी।
हर रचना उसी की लगती है मुझे
जो हमें रचता है
और उसे नकारना स्वय को भी तो नकारना है?
हमारे मानदंडो पर सिद्ध किया हुआ
वो खास और अहम्
कई बार हो जाता है निरस्त
बासी और सन्दर्भहीन होकर,
कई बार नही होता जो प्रत्यक्ष भी
वह होता है
बल्कि वही होता है विश्वसनीय
ईश्वर, प्रेम और ममता की तरह
जिन्हें व्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है
कोई भी भाषा
बस, उसे समझने के लिए
लटकना पडता है
सोच की सलीब पर

फुटपाथ

फुटपाथ
जो कभी हुआ करते थे
लावारिसों के आशियाने
पैदल चलने वालों के राजपथ,
अब तो केवल फैली हुई
बाहें हैं बाजार की
सब कुछ अपने में समेटती हुई

फुटपाथ, हाथों में झण्डिया लिए
सजे-संवरे बच्चों की तरह
अपने होठों पे मुस्कान चिपकाए
ग्राहकों के स्वागत में खड़े हैं
अभिवादन की मुद्रा में

अब है ही कहां फुटपाथ?
सड़क ही सड़क नहीं है जब
बाजार ही बाजार है हर तरफ,
हर कोई खड़ा है
अपनी ही बोली लगाता हुआ
बिक रहा है खरीददार भी कहीं न कहीं।

सलामी

जब भी वो सफेदपोश शैतान
देता है मेरे दरवाजे पे दस्तक
मै अपने आगन मे
उसी की कब्र खोद रहा होता हूँ
लेकिन वो भीतर आकर
अनायास मेरे अस्तित्व पर हावी हो जाता है,
मैंने कितनी ही बार
उसके लिए कब्र खोदी
मगर हर बार वह मुझे ही
उसमे धकेल कर चला गया
इस बार तय था
कि मिटा दूगा उसका निशान भी
जब मैंने उस पे बन्दूक तानी
वह तिरगे झण्डे में लिपट गया
पार्श्व में बजने लगा राष्ट्रगीत
और मैं उसे सलामी देने लगा।

नफरत

जब भी फैलती है नफरत
उखड़ने लगती है
सम्बन्धों की साँसें
सुलगने लगती है
उपवन की हर शाख
अपने ही लोगों की आँखों में
दिखाई देता है उबलता हुआ खून
बरसने लगती है चिंगारियाँ
सहम जाते हैं गीत
रुंध जाते है गजलों के गले
सिसकने लगता है प्यार
सियाह पड जाते हैं चाँद-से चेहरे,
और जब यह नफरत
धर्मों के ध्वज लेकर निकलती है
सडकों पर,
आसमान से बरसती है लानत
गर्व से मुस्कराते हैं शैतान
हवा में तैरने लगती हैं चीखें
सिर धुनने लगते हैं वो मसीहा
जो इस धरती को स्वर्ग बनाने आए थे।

कर्फ्यू

सर्प की तरह
कुण्डली मार कर
बैठा हुआ है सन्नाटा
टूट रही है सांसों की लय
शका और दहशत का घेराव
सगीन की तरह
सीना चीरता हुआ भय
गलिया गूंगी
चौराहे चुप
सड़के वीरान
एक जीवित शहर को
ओढ़ा दिया गया है
कर्फ्यू का कफन
दिल की धडकने
कितनी साफ सुनाई देती हैं!

क्यों अकेला है आदमी

क्यों अकेला समझता है आदमी
अपने को अपनो के बगैर?
हजारो शिकायते लेकर भी
बेचैन है आदमी
आदमी के विना
घर है, दीवारे है
पेड है, हवा है, चिडिया है
सूरज, चाँद और तारे है
अनगिनत नज़ारे हैं
अनगिनत विचार
अनगिनत यादे
अनगिनत सपने,
क्या कुछ नहीं है उसके पास?
सब कुछ उसका अपना
चिरपरिचित
क्यो भागता है आदमी स्वयं से?
क्यो अकेला है आदमी
अपनो के साथ?

निर्णायक युद्ध

वेशर्म चेहरो पे
क्रान्ति का मुखौटा पहन कर
जो सदा अग्रिम पक्ति मे चलते हैं
खुद कभी नहीं मरते
लडाई खत्म होने के वाद
केवल लाशे गिनते हुए मिलते हैं
और जव इतिहास वनता है
लाशो का नाम कहीं नहीं होता।
जो सुरक्षित रह कर
सम्मानित होते रहे
और विषवीज वोते रहे
आओ!
सवसे पहले उन्हीं को निशाना वनाएं
निर्णायक युद्ध के लिए
यह कदम वहुत जरूरी है।

नरभक्षी आकांक्षाएं

नरभक्षी आकांक्षाएं
लावे की तरह फैल रही हैं हर ओर
सब कुछ राख में बदलने के लिए
और हम उससे बचाव के लिए
संचय कर रहे हैं—बारूद
सभ्यता की जड़ों मे भर रहे है—बारूद
भविष्य की कोख में धर रहे हैं—बारूद
सीने में सुलग रहा है—बारूद
इक-दूजे के रक्त से
रंग रहे हैं अपनी कौमों के ध्वज
भय से पीले होते जा रहे है
बच्चों के जिस्म
मुर्झा रहे है मांओं के चेहरे,
जमने लगा है धमनियों का रक्त
बुद्धि भ्रष्ट
नैतिकता नंगी
और पवित्रता में रेंग रहे हैं
जहरीले कीड़े
सूख रहे हैं शान्ति के जलकूप
सुरक्षा के लिए तैनात की जा रही मौत।

नरभक्षी आकांक्षाएं

नरभक्षी आकाक्षाएं
लावे की तरह फैल रही हैं हर ओर
सब कुछ राख में बदलने के लिए
और हम उससे बचाव के लिए
सचय कर रहे हैं—बारूद
सभ्यता की जड़ों मे भर रहे है—बारूद
भविष्य की कोख में धर रहे हैं—बारूद
सीने मे सुलग रहा है—बारूद
इक-दूजे के रक्त से
रंग रहे हैं अपनी कौमों के ध्वज
भय से पीले होते जा रहे है
बच्चों के जिस्म
मुर्झा रहे हैं मांओं के चेहरे,
जमने लगा है धमनियों का रक्त
बुद्धि भ्रष्ट
नैतिकता नंगी
और पवित्रता में रेंग रहे हैं
जहरीले कीडे
सूख रहे हैं शान्ति के जलकूप
सुरक्षा के लिए तैनात की जा रही मौत।

मां, मैं और सपने

मां की बुझी आंखों में
कैद हैं कई सपने
झुर्रियों के जाल से
जो झांकती है आशा की किरन
वो मैं हूं
—उसका एक जीवित विश्वास
कितने ही युद्ध लड़कर
उसने जो रचा था एक इतिहास
उसी के सहारे जिन्दा है आज तक
और मैं।
अपने ही सपनों में खोया हूं
सपने—उसके न होने के बाद के सपने
मां, जो मां होते ही
हो गई थी बूढ़ी,
कई मौसम मर चुके थे उसके भीतर
निरन्तर आशाओं के पुल बांधती हुई
हो रही है जर्जर
अब वह जब भी करती है
थक जाने की शिकायत
मैं उसे नींद की गोलियां दे कर
सुला देता हूं बस।

मां, मैं और सपने

मा की बुझी आखों मे
कैद है कई सपने
झुर्रियो के जाल से
जो झांकती है आशा की किरन
वो मैं हूं
—उसका एक जीवित विश्वास
कितने ही युद्ध लड़कर
उसने जो रचा था एक इतिहास
उसी के सहारे जिन्दा है आज तक
और मै!
अपने ही सपनों मे खोया हूं
सपने—उसके न होने के वाद के सपने
मां, जो मां होते ही
हो गई थी बूढ़ी,
कई मौसम मर चुके थे उसके भीतर
निरन्तर आशाओ के पुल बाधती हुई
हो रही है जर्जर
अव वह जव भी करती है
थक जाने की शिकायत
मैं उसे नींद की गोलियां दे कर
सुला देता हूं बस।

हवा का अर्थ

दो होठो के बीच से
रुक-रुक कर निकलती हुई हवा ही तो
कहलाती है वाणी ?
वाणी से निकलते है शब्द
और शब्दो से भाषा
अब इस भाषा का अर्थ
हवा का अर्थ ही तो है ?
कितना जपते है ध्यान से ?
अलापते हैं सुरो मे
गाते है रागो मे
कहाँ व्यक्त कर पाते है फिर भी खुद को ?
छटपटाते हैं केवल
उसे ही कहने की कोशिश मे
जो रह जाता है भीतर
इसी प्रयास मे हम
बोलते रहते है उम्र भर
और एक दिन चुक जाती है हवा भी।

मां, मैं और सपने

मा की बुझी आखो में
कैद है कई सपने
झुर्रियों के जाल से
जो झांकती है आशा की किरन
वो मैं हूं
—उसका एक जीवित विश्वास
कितने ही युद्ध लड़कर
उसने जो रचा था एक इतिहास
उसी के सहारे जिन्दा है आज तक
और मैं!
अपने ही सपनो मे खोया हूं
सपने—उसके न होने के बाद के सपने
मा, जो मां होते ही
हो गई थी बूढ़ी,
कई मौसम मर चुके थे उसके भीतर
निरन्तर आशाओ के पुल बाधती हुई
हो रही है जर्जर
अब वह जब भी करती है
थक जाने की शिकायत
मै उसे नींद की गोलियां दे कर
सुला देता हूं बस।

हवा का अर्थ

दो होठो के बीच से
रुक-रुक कर निकलती हुई हवा ही तो
कहलाती है वाणी ?
वाणी से निकलते हैं शब्द
और शब्दो से भाषा
अब इस भाषा का अर्थ
हवा का अर्थ ही तो है ?
कितना जपते हैं ध्यान से ?
अलापते हैं सुरो मे
गाते है रागो मे
कहाँ व्यक्त कर पाते है फिर भी खुद को ?
छटपटाते हैं केवल
उसे ही कहने की कोशिश मे
जो रह जाता है भीतर
इसी प्रयास मे हम
बोलते रहते हैं उम्र भर
और एक दिन चुक जाती है हवा भी।

मां, मैं और सपने

मां की बुझी आखो में
कैद हैं कई सपने
झुर्रियो के जाल से
जो झांकती है आशा की किरन
वो मैं हूं
—उसका एक जीवित विश्वास
कितने ही युद्ध लड़कर
उसने जो रचा था एक इतिहास
उसी के सहारे जिन्दा है आज तक
और मैं।
अपने ही सपनों में खोया हूं
सपने—उसके न होने के बाद के सपने
मां, जो मां होते ही
हो गई थी बूढ़ी,
कई मौसम मर चुके थे उसके भीतर
निरन्तर आशाओं के पुल बाधती हुई
हो रही है जर्जर
अब वह जब भी करती है
थक जाने की शिकायत
मैं उसे नींद की गोलिया दे कर
सुला देता हूं बस।

लाशों का इतिहास

इतिहास पढ़ते-पढ़ते
मै ऊब गया हूं
सूघते-सूंघते लाशों की सडांध
सडने लगा है मेरा वर्तमान भी,
हर इतिहासकार
कोई गुमशुदा लाश ढूंढ कर
चौहराहे पर ला पटकता है
और अपने ही हिसाब से
उसका पोस्टमार्टम करके
छोड जाता है शहर की छाती पर
लोग बना डालते है उसका स्मारक,
कई जिन्दा लोग
ऐसी लाशे ढोते-ढोते
—मर चुके हैं
लाशे अब भी जिन्दा है।

पत्थर नहीं होते हैं शब्द

शब्द नहीं होते
काटे मे फसी मछलियो की तरह
जिन्हे पकड़ कर
जमा करते जाए दिमाग की टोकरी मे,
मछलिया मर जाती हैं
कुछ देर फड़फडा कर
शब्द जिन्दा रहते हैं
हमारे बाद भी,
शब्द जिन्हे संजोना पड़ता है
ध्यान और जतन से
इस्तेमाल करना पड़ता है सलीके से

शब्द संगीत है, सैलाब है
और हथियार भी
गूगी घाटी में नदी की गूज
आदमी के जिन्दा होने का सबूत

पत्थर नहीं होते है शब्द
जिन्हें बटोरते रहो अपनी झोली मे
दूसरो पर फेकने के लिए।

ज्वालामुखी

सहज नहीं होता
किसी पहाड़ का विचलित होना
यू ही नहीं टूटता किसी पहाड का धीरज
निरन्तर आघातो से
टूटती है सब्र की सीमाएं
जब बिफरता है पहाड
फड़फड़ी खा कर झटक देता है
जिस्म पर जमी वर्षो की बर्फ
फाड़ कर फेक देता है अपना लबादा
फूट कर उगलने लगता है लावा
सब कुछ अपने मे समेट कर
राख करता हुआ
मुझे जो भी लगता है
धीर गभीर और शान्त
डर लगता है उनसे
मै डरता हूँ उनसे भी
जो जुल्म सहकर भी
करते जा रहे है सब्र
और अब फूटने को है ज्वालामुखी की तरह।

कट गई ज़िन्दगी

कट गई जिन्दगी बातो ही बातो मे
हजारो हादसे
अनगिनत सपने
बेशुमार इच्छाए
किसे कहा तक याद करे ?
किसे भूले ?
काम नाम धन
दुख-सुख
भूख और मैथुन
अनगिनत विषयो की यह पुस्तक
पढ़ी जा चुकी है लगभग
अब क्या याद रखे ?
किस-किस का हिसाब करे
बांटना है, बटना है
पल-पल घटना ही घटना है
अब घर का एक कौना
कौने मे एक खाट
खाट पर है बीमार ज़िन्दगी
हिसाब न किताब
पन्ना है साफ
कट गई जिन्दगी

मैं समझने लगा हूँ

तुम मुक्त हो।
तुम जिन्दा हो।
बार-बार यह याद दिलाया जाना
कोई साजिश तो नहीं

यह मुक्ति
यह जिन्दगी
गुलामी और मौत का
अनुवाद तो नहीं ?

यह जहर है
यह अमृत
यह दोस्त है
यह दुश्मन
हर चीज को अपने ही हिसाब से
समझाने का प्रयास
तुम्हारा ही उगला हुआ
निगलने की मनुहारें
पांव छीन कर बैसाखिया बांटने की दरियादिली
तुम्हारे वादे और इरादे
मैं समझने लगा हूं।